National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040
www.nationaljournals.com
Volume 1; Issue 1; March 2016; Page No. 32-34

दार्शनिक क्षेत्र में अष्टावक्र गीता का परवर्ती दर्षनषास्त्र के लिए योगदान

डॉ0 राजकुमार

शोध–छात्र (डी0लिट0) संस्कृत विभाग, बी0 एस0 ए0 कॉलेज, मथुरा

सार
परवर्ती दर्शनशास्त्र के व्यापक साहित्य पर दार्शनिक क्षेत्र में भी श्रीमद्भगवद्गीता की भाँति अष्टावक्र गीता का भी प्रभाव पड़ा। इस गीता में अन्य दार्शनिक ग्रन्थों की अपेक्षा आध्यात्मिक तथ्यों यथा ज्ञान वैराग्य, मोक्ष, संसार, आत्मा, जीवन्मुक्त पुरुष की स्थिति, जैवन्मुक्त का व्यवहार आदि को सैद्धातिक रूप से समझाया गया है। अष्टावक्र गीता से महर्षि अरविन्द घोष बड़े ही प्रभावित हुए। उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर दार्शनिक प्रवचनों में अष्टावक्रगीता की पृष्ठभूमि पर आधारित आत्मज्ञान एवं जीवन्मुक्त पुरुष की अवधारणा को यत्र तत्र परवर्ती दार्शनिक वाड.मय के पृष्ठों में संयुक्त ही नहीं किया प्रत्युत दार्शनिक क्षेत्र के विकास में बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह गीता परवर्ती दर्शनशास्त्र के लिये प्रेरणा श्रोत रही है, इसके वक्ता महर्षि अष्टावक्र और श्रोता राजा जनक के आध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा पुराणों, रामायण, महाभारत तथा श्रीमद्भगवद्गीतादि ग्रन्थों में देखने को मिलती है। इसी से प्रभावित होकर चित्रकूट विश्वविद्यालय के कुलपति स्वामी रामभद्राचार्य जी ने अष्टावक्र महाकाव्य की रचना की है। इस शोध पत्र विज्ञजनों को अष्टावक्र गीता का परवर्ती दर्शन शास्त्र के लिये योगदान के विषय में अवगत करायेगा।

प्रस्तावना
परवर्ती दर्शनशास्त्र के व्यापक साहित्य पर दार्शनिक क्षेत्र में भी गीता की भाँति अष्टावक्र गीता का भी प्रभाव पड़ा। अष्टावक्र गीता से महर्षि अरविन्द घोष बड़े ही प्रभावित हुए। उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर दार्शनिक प्रवचनों में अष्टावक्रगीता की पृष्ठभूमि पर आधारित आत्मज्ञान एवं जीवन्मुक्त पुरुष की अवधारणा को यत्र तत्र परवर्ती दार्शनिक वाड.मय के पृष्ठों में संयुक्त ही नहीं किया प्रत्युत दार्शनिक क्षेत्र के विकास में बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान किया है। महर्षि अरविन्द की दार्शनिक विचारधारा पर जिस प्रकार अष्टावक्र गीता तथा प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति (गुरूकुल पद्धति) का प्रभाव पड़ा उसका संक्षिप्तीकरण निम्नवत है–

श्री अरविन्द षिक्षा
श्री अरविन्द की शिक्षा अथवा दार्शनिक दृष्टि यह निर्दिष्ट करती है कि एक सत्ता और चेतना यहाँ भौतिक जगत् में अथवा संसार में प्रकृति अथवा मायारूप जड़ तत्व में सम्पृक्त या अन्तर्निहित है किन्तु दार्शनिक दृष्टि से विकास की प्रक्रिया द्वारा वह अपने आपको मुक्त करती है। जो कुछ निश्चेतन प्रतीत होता है, उसी में चेतना दिखायी देती है और जब एक बार चेतना प्रकट हो जाती है तो उसके बाद वह क्रमशः ऊँचाई की ओर बढ़ती हुई प्रतीत होने लगती है और साथ ही बड़ी से बड़ी पूर्णता की ओर बढ़ती हुई विकसित होती है। चेतना की इस उन्मुक्ति की प्रथम अवस्था है प्राण और दूसरी अवस्था है मन; परन्तु मन तक आकर ही चेतना का क्रम विकास समाप्त नहीं हो जाता; वह किसी बड़ी चीज के अन्दर एक आध्यात्मिक और अतिमानसिक चेतना के अन्दर जो मिलने के लिए प्रतीक्षा कर रहा है। अतएव क्रमविकास का अगला कदम होगा सचेतन सत्ता में अतिमानस और आत्म के सर्वोपरि शक्तिशाली बनने की ओर प्रगति करना एवं केवल उसी अवस्था में सभी वस्तुओं में अन्तर्लीन भगवान् जीवात्मा को (अपने को) पूर्णतः मुक्त करने जीवन पूर्णता को व्यक्त करने में समर्थ होगा।

श्री अरविन्द की साधना षैली
महर्षि अरविन्द की साधना शैली की पृष्ठभूमि प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक अथवा दार्शनिक विचारधारा पर आधारित ज्ञात होती है जिस विचारधारा में चरमज्ञान की सर्वश्रेष्ठ दो पुस्तक हैं प्रथम श्रीमद्भगवद्गीता तथा द्वितीय अष्टावक्र गीता है। मानव जीवन के उच्चादर्श उसके मानसिक विकास के बिना अभिव्यक्त नहीं हो सकते। प्राकृतिक विकास जिस प्रकार वानस्पतिक संरक्षण पर आधारित है; उसी प्रकार मानवीय विकास उसकी इच्छा शक्ति पर निर्भर है परन्तु मनुष्य की केवल इच्छा शक्ति की सहायता से ही पूर्णतः यह का सम्पादित नहीं हो सकता क्योंकि मन कुछ दूर तक ही जाता है। और उसके बाद कुछ गोल गोल चक्कर काट सकता है। मानसिक विकास आध्यात्मिक विकास के बना सम्भव नहीं है। इसके लिए मनुष्य के अन्दर एक बड़े परिवर्तन का होना अथवा चेतना के अन्तर्गत एक क्रान्ति आ जाना अत्यन्त आवश्यक है जिससे उसकी जागतिक किंवा व्यावहारिक एवं मानसिक जीवन–पद्धति में बड़ा बदलाव (परिवर्तन) दिखायी देने लगे अर्थात् उसका मन एक उच्चतर तत्त्व अथवा आत्मिक विकास की श्रेणी में परिणित हो जाये। श्री अरविंद के अनुसार वस्तुतः आत्मिक विकास की पद्धति हमें योग के प्राचीन मनोवैज्ञानिक अनुशासन और साधना में उपलब्ध होती है।

प्राचीनकाल में इस संसार से अलग होकर तथा आत्मा में अथवा आत्मतत्त्व की उच्चता में विलीन होकर आत्मानुसंधान की चेष्टा किंवा क्रियात्मक योग साधना के माध्यम से आत्मदर्शन हेतु अभ्यास किया जाता था। यह निरन्तर अभ्यास वैराग्यासिद्धि पर्यन्त संचालित होता था। श्री अरविन्द की निष्कर्षतः यही शिक्षा है कि एक उच्चतर तत्व की प्राप्ति किंवा आत्मज्ञान की अनुभूति ही मानव जीवन का चरमलक्ष्य अथवा परमोद्देश्य है। वस्तुतः यह परमतत्व का अवतरण हमारे आध्यात्मिक आत्मस्वरूप को केवल जगत् से बाहर ले जाकर ही मुक्ति नहीं दिलाएगा प्रत्युत इस जगत् के अन्दर भी रहकर हमें जल में स्थित पद्मपत्र की कर्मों से निर्लिप्त रखकर मुक्त करायेगा अथवा मानसिक अज्ञान अथवा सीमिति ज्ञान के स्थान पर अतिमानसिक सत्य चेतना को स्थापित करेगा। जो चेतना आन्तरिक आत्मा के अनुसन्धान का यन्त्र होगी और इसी की सहायता से मनुष्य अन्तर्मुख और क्रियाशील दोनों भावों में अपने आपको प्राप्त करेगा। यही नहीं इस आत्मानुसंधान की प्रक्रिया में वह साधक अपनी पशुता से भरे अज्ञानान्धकार से निःसृत होकर एक दिव्यज्योति में प्रविष्ट होगा इसी तरह उद्देश्य की पूर्ति के लिए योग और साधना का यथार्थ रूप से उपयोग किया जा सकता है।[1] आत्मिक विकास की इसी पद्धति या जीवन शैली को अपनाने वाला श्री अरविन्द शिक्षा की साधना का उत्तम मार्ग ही हमारी प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति की पुनरावृत्ति करने में उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

उपर्युक्त विवेचन के द्वारा यही तथ्य व्यक्त होता है कि महर्षि अरविन्दादि की दार्शनिक विचारधारा श्रीमद्भगवद्गीता और अष्टावक्र गीता के द्वारा होने वाले आत्मिक विकास के उपदेशों से एवम् आध्यात्मिक परिज्ञान से अत्यन्त प्रभावित रही है। इसी प्रकार महर्षि श्री रामकृष्ण परमहंस का अध्ययन तदनुकूल, तत्त्वार्थ बोध एवं आचरण तथा अपने शिष्यों को प्रदान किया जाने वाला उपदेश और अध्यापन किंवा प्रचारण–प्रसारण रूप[2] उपर्युक्त आध्यात्मिक शैली या शिक्षा पद्धति के ही अन्तर्गत परिगणित किया जाता है क्योंकि अच्छे अध्यापक किंवा आदर्श शिक्षक एवं उसकी शिक्षा पद्धति चार सोपान बतलाये गये हैं जिन पर चलकर प्रशिक्षक आदर्श बन सकता है 1. अधीति 2. बोध 3. आचरण 4. प्रचारण– गुरूकुलीय शिक्षा पद्धति के ये चारों सोपान हैं।

अष्टावक्र गीता की विवेचना के अन्तर्गत यह भी कहना युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि आत्मतत्व के नैक्ट्य से सम्बद्ध आत्मज्ञान प्राप्ति का उपदेश जितना इस दार्शनिक ग्रन्थ में निर्दिष्ट किया गया है उतनी विशुद्धता तथा सुकरता के साथ उपदेश अन्यत्र दुर्लभ है।

इसी प्राचीन शिक्षा की आध्यात्मिक शैली से प्ररित एवं प्रभावित होकर स्वामी रामकृष्ण ने अपने जिज्ञासु शिष्य नरेन्द्र को भी उसी शैली को अपनाने का आदेश देते हुए उसे विवेकानन्द सरस्वती की संज्ञा से सम्बोधित किया और आत्माज्ञान का अधिकारी मानकर उसको अष्टावक्र गीता के अध्ययनार्थ सम्प्रेरित किया। अपने अष्टावक्र गीता के अध्ययनोपरान्त स्वामी विवेकानन्द सरस्वती आत्मानुसन्धान में स्वयं आत्मसात होकर निर्बीज[3] एवं सम्प्रज्ञात समाधियों की अवस्था में एकान्त स्थान में पहुँचकर यथावसर निमग्न होने लगे। युवा सन्यासी विवेकानन्द ने 'राष्ट्र देवो भव' की भावना के श्रुति वाक्य को भी आत्मसात करके स्वयं स्वदेशनिष्ठ बनकर प्रायः सम्पूर्ण विश्व भर में भारत देश को विश्वगुरू की महनीय उपाधि से अलंकृत ही नहीं कराया, प्रत्युत अपने देश के आध्यात्मिक ज्ञान को सर्वोत्कृष्ट कीर्तिध्वज सम्पूर्ण भूमण्डल पर फहराते हुए आध्यात्मिक प्रतिष्ठा के क्षेत्र में अपने देश के मस्तक को उन्नत किया।

उपर्युक्त विवेचन के द्वारा यही तथ्य उजागर होता है कि अष्टावक्र गीता का परवर्ती दार्शनिक विचारधारा एवं दार्शनिक क्षेत्र के अन्तर्गत परिगणित किये जाने वाले दार्शनिक ग्रथों के पारम्परिक विकास में पर्याप्त योगदान रहा है। श्री अरविन्द के योग तथा शिक्षा एवं साधना पद्धति का एकमात्र जो उद्देश्य रहा है; उसका निष्कर्षतः यही अभिप्राय सूचित होता है कि प्राचीन वैदिक धर्म को उन्नत करना अथवा प्राचीन धर्मों समन्वयात्मक स्वयं को प्रतिष्ठापित करना। उनके योग को उद्देश्य है आन्तरिक आत्मविकास जिसके द्वारा योग को प्रत्येक साधक यथा समय सर्वभूतों में स्थित अद्वितीय आत्मा को प्राप्त कर सके तथा अपने तथा अपने अन्दर मानसिक चेतना से उच्चतर एक ऐसी चेतना को तथा एक ऐसी आध्यात्मिक और अतिमानसिक चेतना को विकसित कर सके जो मानव प्रकृति को रूपान्तरित करके उसे दिव्य बना सके।[4]

इसी तारतम्य में युवा सन्यासी स्वामी विवेकानन्द ने अपने आध्यात्मिक सद्गुरू महर्षि श्री रामकृष्ण परमहंस द्वारा निर्देशित एवं निश्चित किये गये दो महान् उद्देश्यों 1. ईश्वर साक्षत्कार और 2. पूजा की एक विधि के रूप में 'मानव सेवा' की पूर्णता किंवा सफलता प्राप्ति के लिए दृढ़संकल्प के सूत्र में बंधे रहने की आत्मानुभूति की। अपने सद्गुरू की सत्प्रेरणा के फलस्वरूप स्वामी जी में अष्टावक्रगीता के स्वाध्याय की संलग्नता के साथ–साथ परिव्राजक बनकर उनके मन्त्रदृष्टा गुरू द्वारा सौंपी गई प्रचण्ड प्रेरणा शक्ति ने उन्हें देश विदेश में भ्रमण करने की बलवती इच्छा को ही जन्म नहीं दिया; प्रत्युत वे भारत भ्रमण की अत्यन्त चाह लिये हुए सर्वप्रथम भारत की पुण्यतम नगरी वाराणसी पहुँचे और एक आश्रम में रहते हुए आत्मानुसन्धान किंवा ईश्वर साक्षात्कार हेतु सचेष्ट हो गये।

उपुर्यक्त विवेचन से यहाँ यही अभिप्राय अभिव्यक्त होता है कि अष्टावक्रगीता में निर्दिष्ट किये गये आत्मानुभव की वास्तविक स्थिति में पहुँचने के लिए स्वामी विवेकानन्द के अन्दर जो यौगिक समाधि में अभिरूचि जाग्रत हुई; वह उनकी साधना पद्धति अथवा जीवनशैली अष्टावक्रगीता के स्वाध्याय के फलस्वरूप ही निश्चित रूप से क्रियान्वित हुई ज्ञात होती है। वैसे तो अष्टावक्र गीता में विधि, वैराग्य अथवा त्याग की अनिवार्यता की निरपेक्षता पर अष्टावक्र जी ने बल दिया है क्योंकि उनके मत में आत्मतत्त्वज्ञ ज्ञानी जन तो दृश्यभाव को नहीं देखते हुए शुद्ध स्फुरण आत्मा का अनुभव करने वाले होते हैं। उन्हें विधि निषेध ग्रहण–वैराग्य अथवा शम व्यागादि की अपेक्षा नहीं होती। उसी एक आत्मतत्त्व को आध्यात्मिक शास्त्र ने 'ब्रह्म' संज्ञा से अभिहित किया है।[5] इस तत्व के विषय में परवर्ती दार्शनिक ग्रन्थों का अनुसन्धान वर्तमान काल में प्रासंगिकता से जोड़ने की आवश्यकता है; जिससे विश्व स्थापित हो सके। इस प्रकार की विचार धारा महर्षि श्री रामकृष्ण परमहंस के अन्तःकरण में विद्यमान थी। इसी भावना को उन्होंने अन्ततः अपने शिष्य नरेन्द्र (विवेकानन्द) में अन्तःपात करने की अभिलाषा से उसे अष्टावक्र गीता का स्वाध्याय करने तथा भ्रमण द्वारा विश्वशान्ति का यथाशक्ति प्रयास करने हेतु आदेश दिया[6]अन्त में श्री विवेकानन्द जी भी अपने सद्गुरू की आज्ञा को शिरोधार्य करके सम्पूर्ण विश्व में भ्रमण करते हुए आत्मतत्व के बोध में संलग्नता किंवा सचेष्टता और मानव सेवा में सक्रियता की जीवन शैली आजीवन अपनाने में प्रयत्नशील बने रहे।

महर्षि अष्टावक्र के अनुसार–

> ''आत्मा में स्थित रहना ही परम अवस्था अथवा निर्वाण या मोक्ष है''

क्योंकि राजा जनक को जब अष्टावक्र के आत्मज्ञानात्मक उपदेश के माध्यम से आत्मस्वरूप का बोध अथवा आत्मानुभव पूर्णरूपेण हो गया तब वे राजा अपनी अभिव्यक्ति इस प्रकार देते हैं– मैंने आपसे तत्व ज्ञानरूपी संसी को लेकर हृदय के अन्दर से अनेक प्रकार के विचाररूपी वाण को निकाल दिया है।[7] वस्तुतः अष्टावक्र के द्वारा प्रदत्त तत्वबोध या आत्मतत्व के उपदेश को श्रवण करके राजा जनक आत्मज्ञान को सर्वात्मना उपलब्ध हो गये क्योंकि उनकी पृष्ठभूमि अथवा अन्तःकरण की विशुद्धता किंवा निर्मलता पहले से ही तैयार थी। उन्होंने किसी प्रकार के शंका भरे प्रश्न नहीं उठाये।

राजा जनक के समीप केवल आत्मतत्व का अनुभव ही शेष रहा तथा उसकी सांसारिक वे समग्र विकृतियाँ (मन, बुद्धि, स्मृति, शरीर, अहंकार, संकल्प, विकल्प, विचार, शास्त्र धर्म, कामनायें किंवा वासनायें आदि) सर्वथा छूट गयी जिन विकृतियों का आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं होता। प्राकृत व्यक्ति की मृत्यु के समय केवल शरीर ही छूटता है किन्तु अन्य सभी विकृतियों संस्कार के रूप में साथ जाती है। जबकि आत्मज्ञान दशा में सभी उपर्युक्त विकृतियाँ सर्वथा छूट जाती है अतएव आत्मज्ञान को अष्टावक्र गीता के अनुसार महामृत्यु कहा जाता है; क्योंकि आत्मज्ञान के पास स्वयं की आत्मा ही शेष रहती है।

अष्टावक्र गीता से परवर्ती सम्पूर्ण प्रज्ञादि पुराण और अन्य धार्मिक ग्रन्थ विशेषतः प्रभावित हुए क्योंकि राजा जनक और अष्टावक्र जी के संवादात्मक आत्मज्ञान के उद्धरण किंवा निदर्शन विभिन्न धर्म ग्रन्थों में विशेषतः आत्मज्ञान को प्रकरण में अनुस्यूत है अर्थात् विषदतया अन्तर्निहित किंवा समाविष्ट है। उदाहरणार्थ प्रज्ञा पुराण के आत्मज्ञान प्रकरण में महर्षि पिप्पलाद जी ही कथा सुना रहे हैं और शंकाओं का समाधान भी कर रहे हैं उस कथा के प्रश्नकर्ता

ब्रह्मज्ञानी अष्टावक्र जी हैं वे अष्टावक्र जिन्होंने जन्म से पहले अपनी विद्वता का परिचय अपने पिता को माता के गर्भ में स्थित होकर ही कर दिया था। जिसके परिणामस्वरूप पिता महर्षि कहोड़ का अहंकार जाग्रत हो जाने से उनका गर्भस्थ पुत्र आठ अंगों से टेड़े मेड़े शरीर वाला होकर जन्म लेने के शापसे अभिशप्त हो गया था। उसी अष्टावक्र ने बारह वर्ष की अवस्था में राजा जनक की विद्वत्सभा में पहुँचकर अपने आत्मज्ञान के माध्यम से जनक को आत्मतत्व का बोध कराया। यह कथा महर्षि पिप्पलाद के द्वारा देवर्षि नारद के श्रीहरि के सान्निध्य में सुनायी गई थी। इस कथा के प्रश्न के समाधान कर्ता महर्षि अष्टावक्र हैं उन्हीं अष्टावक्र ने जनक के द्वारा पूछे गये उनके उस स्वप्न की बात का रहस्योदघाटन किया, जनक ने अपना स्वप्न पण्डितों की सभा बुलाकर उन्हें निम्नवत् सुनाया–

स्वप्न में मैं (राजा जनक) भिखारी हो गया हूँ, भूख से पीडित रहा; किन्तु खाने को कुछ नहीं मिला हैं भिक्षा मांगने पर किसी ने बनी हुई खिचड़ी दी। उसे खाने ही वाला था कि ठोकर लगी और खिचड़ी भी गिर गयी; उसे कुत्ते ने खा लिया तब तक आंख खुल गयी व्यग्र मन से प्रातः पण्डितों की सभा में सबसे प्रश्न पूछा गया– ''यह सच है या वह सच है? कोई भी पण्डित उनके प्रश्न को नहीं समझ सका। अंत में महर्षि अष्टावक्र वहाँ आये; तब राजा ने उनसे भी यही प्रश्न पूछा उसे सुनकर अष्टावक्र जी ने कहा–

> ''हे राजन्! न यह सच है और न वह सच है। सत्य तो केवल ब्रह्म है। यह जगत् मिथ्या है''

यह सुनकर राजा ने उन्हें सम्मानित किया। वहाँ सभी पण्डित आश्चर्य चकित हो गये। उस स्वप्न का रहस्योद्घाटन करते हुए अष्टावक्र ने सभी को समझाया– वास्तव में ये न भिखारी है और न राजा हैं ये सब तो माया के विवध रूप हैं। सत्य केवल यह है कि आत्मा ब्रह्म का ही अंश है, वह न राजा है और न भिखारी है। अतः उसी ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होने पर संशय से छुटकारा मिल जाता है'' ऐसे ब्रहमज्ञानी अष्टावक्र जी पिप्पलाद जी से प्रश्न पूछ रहे हैं– जिसके सन्दर्भ में प्रज्ञापुराण के उद्धरण उक्त आत्मज्ञानरूपी सारतत्व प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के निष्कर्ष के रूप में निम्नवत प्रस्तुत है–

> एकदा तु हिमाच्छन्ने ह्युत्तराखण्ड मण्डले।
> अभयारण्यके ताण्डय शमीकोद्दालकस्तया।।[8]
> पिप्पलादं प्रपच्छातो महाप्राज्ञमृषीश्वरम्
> अष्टावक्रो महाज्ञानी लोककल्याण हेतवे।।[9]

अष्टावक्र गीता और श्रीमद्भगवद्गीतादिक आध्यात्मिक ज्ञानकाण्ड के सन्दर्भ में जो अष्टावक्र जनकादि के भी उपाख्यानों का उल्लेख किया गया है वह सब आत्मतत्व अथवा वास्तविक तत्वार्थ का बोध मानव जीवन का परम पुरूषार्थ अथवा मोक्ष या निर्वाण किंवा कैवल्य प्राप्ति का हेतु है; क्योंकि यह तथ्य ऋते ज्ञानान्मुक्तिः के आदर्श वाक्य से प्रमाणित होता है। मानव जीवन के प्रमुख लक्ष्य किंवा उद्देश्य पुरूषार्थ चतुष्ट्य के अन्तर्गत जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष परिगणित किये गये है। उन चारों में परम पुरूषार्थ अथवा मोक्ष की प्राप्ति बिना आत्मज्ञान के सम्भव नहीं है जैसे ब्रह्मज्ञानी अष्टावक्र के उपदेश से राजा जनक को उसी आत्मतत्व का अन्ततः बोध प्राप्त होने पर उनको संसार शून्य लगने लगा और केवल आत्मा के प्रकाश का उन्हें अनुभव होने लगा। श्रीमद्भगवद्गीता के श्रोता अर्जुन की अपेक्षा अष्टावक्र गीता के श्रोता राजा जनक आत्मज्ञान के श्रेष्ठ जिज्ञासु किंवा अधिकारी शिष्य कहने योग्य है; क्योंकि गीता में भी जनक के आत्मतत्व बोध की अथवा तत्वसिद्धि की चर्चा भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा की गयी है।[10] अस्तु; अष्टावक्रगीता का आध्यात्मिक ज्ञानकाण्ड के विषय में श्रीमद्भगवद्गीता से तुलनात्मक अध्ययन किंवा समीक्षण प्रस्तुत करने पर यही निष्कर्षात्मक तथ्य अथवा सार अभिव्यक्त होता है कि अष्टावक्र गीता आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए उत्क्रष्टतम दार्शनिक ग्रन्थ है। इसी अष्टावक्र गीता को केन्द्रित मानकर चित्रकूट विश्वविद्यालय के कुलपति स्वामी रामभद्राचार्य जी ने अष्टावक्र महाकाव्य की रचना की है।

निष्कर्षतः दार्शनिक क्षेत्र में अष्टावक्र गीता का परवर्ती दर्शनशास्त्र के लिए योगदान के सन्दर्भ में दिये गये तथ्यों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि अष्टावक्र गीता परवर्ती दर्शनशास्त्र के लिए प्रेरणा स्रोत रही है क्योंकि अष्टावक्र गीता के प्रणेता महर्षि अष्टावक्र और राजा जनक के उपाख्यानों का विवेचन रामायण, महाभारत और श्रीमद्भगवद्गीतादि ग्रन्थों में प्राप्त होता है जिसका परम विद्वान स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पातंजल योगप्रदीप (समाधिपाद),1/15
2. नैषधीयचरितम्:प्रथम सर्ग
3. पातंजल योगप्रदीप (समाधिपाद),1/18
4. श्री अरविन्द के योग का एक मात्र उद्देश्यःअगस्त–1934
5. अष्टावक्र गीता,18/71
6. परिव्राजक सन्यासी पुस्तक विवेकानन्द केन्द्र प्रकाशन टस्ट –5 सिन्गाराचारी स्ट्रीट– 5 ट्रिप्लिकेन क्षेत्र 60005
7. अष्टावक्र गीता,19/1
8. प्रज्ञापुराणं कथामृतम्,1/2/1प्रकाशन युगनिर्माण योजना,गायत्री तपोभूमि,मथुरा
9. प्रज्ञापुराणकथामृतम्,1/2/1 प्रकाशन युगनिर्माण योजना,गायत्री तपोभूमि,मथुरा
10. श्रीमद्भगवद्गीता,3/20